श्रीः ।

अथ सरस्वतीकवच, स्तोत्र ।

भाषानुवादसमलंकृत ।

प्रथमोऽध्यायः १.

नारद उवाच ।

श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम् ।
अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम् ॥ १ ॥

अर्थ–नारदजीने कहा हे प्रभो ! मैंने आपकी कृपासे अमृतके समान मधुर पूर्वका सब वृत्तान्त सुना. अब पंचमकृति देवियोंका पूजन अलग २ वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता ।
केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो ॥२॥

अर्थ–किसका किसने किस मंत्रसे पूजन किया है ? और किसने किसप्रकार किसका स्तवन किया है ? तथा किस प्रकारसे किसका पूजन मर्त्यलोकमें प्रचलित हुआ ? ॥ २ ॥

तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम् ।
कामिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

अर्थ-उन सबका स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव और शुभ चरित किसप्रकार है ? और किन देवियोंने किनको वर दिया है वह मेरे लिये कहनेको आप योग्य हो ॥ ३ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मी सरस्वती ।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता ॥ ४ ॥

अर्थ-नारायणने कहा-हे नारद! सृष्टिरचनामें गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री ये पांच प्रकृतियां हैं ॥ ४ ॥

आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः ।
सुधोपमं च चरितं सर्वं मङ्गलकारणम् ॥ ५ ॥

अर्थ-इनकी पूजाविधि, अद्भुत प्रभाव और सुधासदृश सर्वमङ्गलनिदान चरित प्रसिद्ध ही है ॥ ५ ॥

प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम् ।
सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्सावधानो निशामय ॥ ६ ॥

अर्थ-अब जो प्रकृतिके अंश और कलासे उत्पन्न हैं उनके ही संपूर्ण शुभचरित्र वर्णन करूंगा; सावधान होकर सुनो ॥ ६ ॥

काली वसुन्धरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका ।
तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा ॥७॥

अर्थ-काली, वसुंधरा, गङ्गा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा (ये प्रकृतिके अंश हैं) ॥ ७ ॥

संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम् ।
जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥ ८ ॥

अर्थ-इनका पुण्यदायक, कानोंको सुखदायक चरित और उसीके संग जीवोंका कर्मविपाक वर्णन करूंगा ॥ ८ ॥

दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत् ।
तदुत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु ॥ ९ ॥

अर्थ-इसीप्रकार दुर्गा और राधाका अत्यन्त विस्तृत उदारचरितका क्रमानुसार संक्षेपसे वर्णन करूंगा ॥ ९ ॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता ।

पूजा

यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः ॥ १० ॥

अर्थ–हे मुनिवर ! जिनके प्रभावसे मूढ पुरुषभी पण्डित हो जाता है. श्रीकृष्णजीने सबसे प्रथम उन्ही देवी सरस्वतीकी पूजा भारतमें निर्माण की ॥ १० ॥

आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः ।
इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी ॥ ११ ॥

अर्थ–कामरूपिणी (यथेच्छ रूप धारण करनेवाली) कामुकी देवी सरस्वतीजीने राधाजीके जिह्वाग्रभागसे आविर्भूत होकर कामवश कृष्णजीको ही अपना पति बनानेकी अभिलाषा प्रकट की ॥ ११ ॥

स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम् ।
तामुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम् ॥ १२ ॥

अर्थ--सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णजी उनका वह भाव जानकर उन लोकमातासे परिणाममें सुख देनेवाला सत्य और पथ्य वचन कहने लगे ॥ १२ ॥

भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम् ।
प्रधानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम् ॥ १३ ॥

अर्थ-श्रीकृष्णजीने कहा-हे पतिव्रते ! मेरे अंशोत्पन्न, चतुर्भुज नारायण युवा, सुश्री और सर्वगुणान्वित हैं और मेरे ही समान हैं ॥ १३ ॥

कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम् ।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलालंकृतमीश्वरम् ॥ १४ ॥

अर्थ-वे स्त्रियोंकी वासना जानते हैं और वासना पूर्ण भी करते हैं. उनके शरीरमें करोड़ कामदेवोंकी शोभा और वे साक्षात् ईश्वर ही हैं ॥ १४ ॥

कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि ।
त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति ॥ १५ ॥

अर्थ-और हे कान्ते ! जो मुझको पति बनाकर मेरे निकट वास करनेकी इच्छा करती हो, सो यह तुमको कल्याणदायक नहीं है. क्यों कि, मेरे समीपस्थ राधा तुम्हारी अपेक्षा प्रबल है ॥ १५ ॥

यो यस्माद्बलवान्वाणि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः ।
कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः ॥ १६ ॥

अर्थ-जो पुरुष जिससे बलवान् है, वह (उस अपनी

अपेक्षा न्यून बलवाले पुरुष) से अन्यकी रक्षा करनेमें समर्थ है. किन्तु, यदि स्वयम् असमर्थ है तो दूसरोंकी रक्षा किस-प्रकार कर सकता है ? ॥ १६ ॥

सर्वेशः सर्वशास्ताऽहं राधां बाधितुमक्षमः ।
तेजसा मत्समा सा च गुणेन च रूपेण च ॥ १७ ॥

अर्थ–मैं सर्वेश्वर और सबका शासन करनेवाला होने-पर भी राधाको दबानेमें असमर्थ हूं. क्योंकि वह (राधा) प्रभाव, रूप और गुणसे मेरे समान है १७ ॥

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः ।
प्राणतोऽपि प्रियः पुत्रः केषां वास्ति च कश्चन ॥१८॥

अर्थ–राधा मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवता है और अपने प्राणोंका त्याग करनेमें कौन पुरुष समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं है. अतएव मैं भी राधाका त्याग नहीं कर सकता. अथवा क्या कोई पुत्र किसीको प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम है ? ॥ १८ ॥

त्वं भद्रे ! गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति ।
पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम् ॥ १९ ॥

अर्थ–इससे हे भद्रे ! तुम वैकुण्ठधाममें जाओ, तुह्मारा कल्याण होगा. तुम उन वैकुण्ठनाथको पति पाकर चिरकाल सुखपूर्वक विहार करो ॥ १९ ॥

लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता ।
तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च ॥ २० ॥

अर्थ–लक्ष्मीजी लोभ, मोह, काम, क्रोध, मान और हिंसारहित हैं तथा रूप, गुण, और प्रभावसे तुम्हारे ही समान हैं ॥ २० ॥

तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालः प्रयास्यति ।
गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि ॥ २१ ॥

अर्थ–अतएव उन (लक्ष्मीजी) के साथ प्रीतिसे तुम्हारा काल सदैव व्यतीत होगा और विष्णुजी भी तुम दोनोंका समान ही आदर करेंगे ॥ २१ ॥

प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम् ।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भे च सुन्दरि ! ॥ २२ ॥
मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः ।
वसवो योगिनः सिद्धा नागा गन्धर्वराक्षसाः ॥ २३ ॥

मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे लयावधि ।
भक्तियुक्ताश्च दत्वा वै चोपचाराणि षोडश ॥ २४ ॥

अर्थ-विशेषतः मैं कहता हूं, प्रतिब्रह्माण्डमेंही माघमासकी जो शुक्ला पंचमीके दिन विद्यारंभ होता है उस दिनके महामहोत्सवमें मनुष्य, मनुगण, देव, मुमुक्षु, मुनि, वसु, योगी, नाग, सिद्ध, गंधर्व, राक्षस, सभी जबतक महाप्रलय उपस्थित नहीं होता तबतक कल्पकल्पमें भक्तिभावसे षोडशोपचार द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च ।
जितेन्द्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च ॥ २५ ॥

अर्थ-सब जितेन्द्रिय और संयमी होकर घरमें वा पुस्तकमें तुमको आवाहन करके यजुर्वेदके कण्वशाखोक्त विधानसे ध्यान और स्तोत्रपाठ करके तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥ २५ ॥

कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम् ।
कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे ॥ २६ ॥

अर्थ-तुम्हारा कवच आठ प्रकारके गंधद्रव्यद्वारा भोजपत्रपर लिखकर, सुवर्णके तावीजमें मढ़ाय, कंठमें वा दक्षिण भुजामें धारण करेंगे ॥ २६ ॥

पठिष्यन्ति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते ।
इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम् ॥ २७ ॥

अर्थ--हे पूजिते, विशेष करके विद्वान् पुरुष पूजाके समय तुम्हारे कवचका पाठ करेंगे ऐसा कहकर श्रीकृष्णजीने स्वयम् सरस्वती देवीकी पूजा की ॥ २७ ॥

ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
अनन्तश्चाऽपि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः ॥२८॥
सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः ।
बभूव पूजिता नित्या सर्वलोकैः सरस्वती ॥ २९ ॥

अर्थ—उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तथा अनन्त देव, धर्म, सनकादि मुनीन्द्रगण, समस्त देव, समस्त मुनि, समस्त राजा और समस्त दानवोंके समाजने सरस्वती देवीकी पूजा की. इसप्रकार उन अनन्तकालस्थायिनी देवी सरस्वतीकी पूजा तीनों लोकों प्रचलित हुई ॥ २८ ॥ २९ ॥

नारद उवाच ।

पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरन्तरम् ।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चन्दनादिकम् ॥ ३० ॥

वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम ।
वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—नारदजी बोले, हे वेदविदांवर ! सरस्वतीपूजाकी पद्धति, ध्यान, कवच, स्तोत्र और पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प और चन्दनादि उपचारका विषय सुननेके लिये मेरे हृदयमें सदा महाकौतूहल विद्यमान रहता है, अतएव आप वह सब कहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम् ।
जगन्मातुःसरस्वत्याःपूजाविधिसमन्विताम् ॥ ३२ ॥

अर्थ—नारायणने कहा हे वत्स नारद ! यजुर्वेदके अन्तर्गत काण्वशाखामें जगन्माता सरस्वतीकी पूजाविधि समन्वित जैसी पद्धति प्रचलित है वह कहता हूं, सुनो ॥ ३२ ॥

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च ।
पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राऽह्नि संयतः शुचिः ॥३३॥

अर्थ—माघशुक्ला पंचमी वा विद्यारंभादिनके पहिले दिन प्रतिज्ञा करके संयत (नियमपरायण) और पवित्र हो ॥ ३३ ॥

स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः।
स्वशाखोक्तविधानेन तान्त्रिकेणाऽथवा पुनः॥ ३४॥

अर्थ—स्नानके पीछे नित्यकर्मका अनुष्ठान कर स्वशाखोक्त (अपने गृह्यसूत्रोक्त) विधानसे अथवा तंत्रोक्त विधानसे ही भक्तिपूर्वक घट स्थापन करके॥ ३४॥

गणेशं पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टं प्रपूजयेत्।
ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे ध्रुवम्॥ ३५॥
ध्यात्वा पुनः षोडशोपचारेण पूजयेद्भ्रती।
पूजोपयुक्तनैवेद्यं यच्च वेदनिरूपितम्॥ ३६॥

अर्थ—प्रथम उस घटमें गणपतिकी पूजा करके फिर जो ध्यान कहता हूं उसी ध्यानसे सरस्वतीकी भावना करके आवाहनपूर्वक फिर ध्यान कर षोडशोपचारसे पूजा करै। हे भद्र! अब वेदमें वा तंत्रमें पूजाकी जिसप्रकार नैवेद्य निर्दिष्ट हुई है॥ ३५॥ ३६॥

वक्ष्यामि सौम्य तत्किंचिद्यथाधीतं यथागमम्।
नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिलल्डुकम्॥ ३७॥

अर्थ—अपने ज्ञानके अनुसार समस्त कहता हूं, सुनो—नवनीत (मक्खन), दधि, क्षीर, खीलैं, तिलके लड्डू॥ ३७॥

इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु ।
स्वस्तिकं शर्करा शुक्लधान्यस्याऽक्षतमक्षतम् ॥ ३८॥

अर्थ—गन्ना, इक्षुरस, पकाहुआ सफेद गुड, मधु, स्वस्तिक (मंगलपिष्टघृतयुक्त अन्न), शर्करा, सफेद धान्यके अक्षत, तंदुल ॥ ३८ ॥

अस्विन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम् ।
घृतसैन्धवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ--नहीं उबाले हुए शुक्लधान्यका चिपिटक (चूडा) शुक्लमोदक, घृतसैंधवसंयुक्त हविष्यान्न ॥ ३९ ॥

यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम् ।
पिष्टकं स्वस्तिकस्याऽपि पक्वरम्भाफलस्य च ॥४०॥

अर्थ-यवचूर्ण वा गोधूमचूर्णका घृतसंयुक्त पिष्टक (कसार), स्वस्तिकका पिष्टक (मंगलदायक मिष्ट पदार्थ), स्वस्तिकयुक्त पकाहुआ केलेका पिष्टक ॥ ४० ॥

परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम् ।
नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम् ॥ ४१ ॥

अर्थ--घृतसंयुक्त परमान्न (खीर), अमृततुल्य मिष्टान्न, नारिकेल, नारिकेलोदक, कसेरू, मूली, अदरख ॥ ४१ ॥

पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम् ।
कालदेशोद्भवं चारुफलं शुक्लं च संस्कृतम् ॥ ४२ ॥

अर्थ-पकीहुई केलेकी फली, अत्युत्कृष्ट श्रीफल, बदरीफल (बेर) और यथाकाल देशोत्पन्न अन्यान्य शुक्लवर्ण सुसंस्कृत फल प्रदान करै ॥ ४२ ॥

सुगन्धं शुक्लपुष्पं च सुगन्धं शुक्लचन्दनम् ।
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शंखं च सुन्दरं मुने ! ॥ ४३ ॥

अर्थ-हे वत्स नारद ! सुगंध शुक्लपुष्प, सुगंधित श्वेतचंदन, नवीन शुक्लवस्त्र, मनोहर शंख ॥ ४३ ॥

माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम् ।
यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम् ॥४४॥

अर्थ-सफेद फूलोंकी माला, शुक्लहार और सुन्दर भूषण सरस्वतीको प्रदान करै. हे महाभाग ! वेदमें सरस्वती देवीका जिसप्रकार उत्तम श्रवणमनोहर ध्यान निर्दिष्ट हुआ है ॥ ४४ ॥

तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम् ।
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम् ॥ ४५ ॥

अर्थ-भ्रमनाशक वह (ध्यान) कहता हूं सो सुनो. जो सरस्वती शुक्लवर्ण, हास्ययुक्त, मनोहर है ॥ ४५ ॥

कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम् ।
वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-जिनके शरीरकी प्रभासे करोड़ चन्द्रमाकी प्रभा भी मलिनता धारण करती है; जिनका परिधान अग्निपरीक्षित विशुद्ध पट्टवस्त्र है; जिनके हाथमें वीणायंत्र और पुस्तक है ॥ ४६ ॥

रत्नसारेन्द्रनिर्माणवनभूषणभूषिताम् ।
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ ४७ ॥

अर्थ-जो सर्वोत्कृष्ट रत्नजात नव भूषणोंसे विभूषित हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि देवतागण सदा जिनकी पूजा करते हैं ॥ ४७ ॥

वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनुमानवैः ।
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्वा विचक्षणः ॥ ४८ ॥

अर्थ-जो मुनीन्द्र, मनु और मनुष्योंसे सर्वदा वंदित होती हैं, मैं भक्तिभावसे उन्हीं शुक्लवर्णा हास्याननां मनो-

हरा सरस्वतीकी वन्दना करता हूं. विचक्षण पुरुष इसप्रकार ध्यान करके सब द्रव्य मूलमंत्रसे उच्चारणपूर्वक प्रदान करै ॥४८॥

संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि ।
येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्या क्रिया मुने ॥ ४९ ॥

अर्थ—फिर स्तवपाठ और कवचधारणपूर्वक पृथ्वीमें गिरकर दंडवत् प्रणाम करै. हे मुनिवर ! यह देवी सरस्वती जिनकी इष्टदेवता है उनकी यह नित्य विधि है ॥ ४९ ॥

विद्यारम्भे च वर्षान्ते सर्वेषां पञ्चमीदिने ।
सर्वोपयुक्तो मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः ॥ ५० ॥

अर्थ—इसके अतिरिक्त सर्व साधारणको विद्यारम्भदिवसमें और वर्षके अन्तमें माघशुक्ला पंचमीके दिन सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये. वेदोक्त अष्टाक्षरयुक्त सर्वोपयोगी मंत्रही सरस्वतीका मूलमंत्र है ॥ ५० ॥

येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च ।
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च ॥ ५१ ॥

अर्थ—अथवा जो जिस मंत्रमें दीक्षित हों वही उनका

मूलमंत्र है. अतएव निज मूलमंत्रसे हो वा सरस्वती शब्दमें चतुर्थी मिलाकर अग्निपत्नी (स्वाहा) अन्तमें धरकर ॥ ५१ ॥

लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ।
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः ॥ ५२ ॥
प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते ।
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥ ५३ ॥

अर्थ—उसके पहिले प्रणव 'श्रीं ह्रीं' बीज उच्चारणपूर्वक उस मंत्रसे अर्थात् "श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा" इस अष्टाक्षर मंत्रसे सरस्वतीजीको सम्पूर्ण वस्तु प्रदान करै । यह मंत्रही कल्पवृक्ष है अर्थात् कल्पवृक्षके निकटसे जिसप्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है इस मंत्रसे भी उसी प्रकार सम्पूर्ण अभीष्ट लाभ होता है. कृपानिधि नारायणने पूर्वकालके समय पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिमुनिको यह मंत्र प्रदान किया. इसके उपरान्त भृगुने एक समय सूर्यग्रहणके समय पुष्करतीर्थमें महर्षि शुक्राचार्यको प्रदान किया ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा ।
भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे ॥ ५४ ॥

अर्थ-मरीचिने चन्द्रग्रहणके समय बृहस्पतीको, बद्रिकाश्रममें ब्रह्माने भृगुको ॥ ५४ ॥

आस्तीकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ ।
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते ॥५५॥

अर्थ-क्षीरोदसागरके तटपर जरत्कारुने आस्तीकको, सुमेरुपर्वतमें विभाण्डकने बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्गको ॥ ५५ ॥

शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा ।
सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च ॥५६॥

अर्थ—शिवजीने कणाद और गौतमको, सूर्यने याज्ञवल्क्य और कात्यायनको ॥ ५६ ॥

शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते ।
ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि ॥ ५७ ॥

अर्थ-अनन्तदेवने पातालतलमें बलिसभामें पाणिनि, मतिमान् भरद्वाज और शाकटायनमुनिको यह मंत्र प्रदान किया था ॥ ५७ ॥

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रः सिद्धो भवेन्नृणाम् ।
यदि स्यान्मन्त्रसिद्धो हि बृहस्पतिसमो भवेत् ॥५८॥

अर्थ-इस मंत्रको चार लक्षवार जपनेसेही मनुष्योंका मन्त्र सिद्ध होता है. मंत्र सिद्ध होनेसे बृहस्पतीके समान विद्वान् होता है ॥ ५८ ॥

कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा ।
विश्वस्रष्ट्रा विश्वजयं भृगवे गन्धमादने ॥ ५९ ॥

अर्थ-पूर्वकालके समय विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीने गंधमादन पर्वतमें भृगुको विश्वजय नामक जो कवच प्रदान किया था उसको कहता हूं, सुनो ॥ ५९ ॥

भृगुरुवाच ।

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद ।
सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित ॥ ६० ॥

अर्थ-एक समय भृगुने सर्वेश्वर सर्वपूजित ब्रह्मासे कहा. भृगु बोले-हे ब्रह्मन् ! हे वेदवेत्ताओंमें अग्रणी ! हे वेदज्ञान-विषयमें प्रवीण ! हे सर्वेश्वर ! हे सर्वपूजित ! ॥ ६० ॥

सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो ।
आयातयामं मन्त्राणां समूहसंयुतं परम् ॥ ६१ ॥

अर्थ-हे प्रभो ! जो सफल और समस्त मंत्रगणयुक्त है

आप वही सर्वोत्कृष्ट विश्वविजयनामक सरस्वती-कवच मुझसे कहिये ॥ ६१ ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—ब्रह्माजी बोले—हे वत्स ! श्रवणमनोहर, वेदविहित, वेदपूजित, सर्वाभीष्टप्रद, सरस्वतीकवचको कहता हूं, सुनो ॥६२॥

उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने ।
रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमंडले ॥ ६३ ॥

अर्थ—सबसे पहले रासेश्वर विभु श्रीकृष्णने गोलोकधाममें वृन्दावन नामक वनमें रासोत्सवके समय रासमण्डलमें यह "सरस्वतीकवच" मुझसे कहा था ॥ ६३ ॥

अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम् ।
अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम् ॥ ६४ ॥

अर्थ—यह कवच अतीव गोपनीय और कल्पवृक्षके समान अतीव उत्कृष्ट तथा अश्रुत अद्भुत मंत्रोंसे परिपूर्ण है ॥ ६४ ॥

यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः ।
यद्धृत्वा पठनाद्ब्रह्मन्बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः ॥ ६५ ॥

अर्थ-हे ब्रह्मन् ! जिस कवचका पाठ और धारण करके बृहस्पति बुद्धिमान् हुए हैं और जिस कवचके बलसे शुक्राचार्यने दैत्योंके निकट प्रधानता लाभ की है ॥ ६५ ॥

पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिकी मुनिः ॥
स्वायंभुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः ॥ ६६ ॥

अर्थ-जिस कवचके पाठसे तथा धारणसे वाल्मीकिजीने वाग्मिता लाभ करके कवीन्द्रपदमें आरोहण किया है. स्वायंभुव-मनु जिसको धारण करके सर्वत्र समादृत हुए हैं ॥ ६६ ॥

कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः ।
ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनं स्वयम् ॥६७॥

अर्थ-कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष, कात्यायन ये सभी जिस कवचको धारण करके ग्रंथकारपदमें अभिषिक्त हुए हैं ॥ ६७ ॥

धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च ।
चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने जिस कवचको धारण करके वेदविभाग और अठारह पुराणोंकी रचना की है ॥ ६८ ॥

शातातपश्चसंवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः ।
यद्धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः ॥ ६९ ॥

अर्थ—शातातप वसिष्ठ, पराशर और याज्ञवल्क्य सरस्वतीकवचको धारण और पाठ करकेहि ग्रंथकार हुए हैं ॥ ६९ ॥

ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा ।
जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः ॥७०॥

अर्थ—ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तिक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इन सबने इसीको धारण करके सर्वत्र समान आदर लाभ किया है ॥ ७० ॥

कवचस्याऽस्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः ।
स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका ॥ ७१ ॥

अर्थ—हे द्विजवर ! प्रजापति स्वयं इस कवचके ऋषि, बृहस्पति इसका छन्द और शारदा अम्बिका इसकी अधिष्ठात्री देवता है ॥ ७१ ॥

सर्वतत्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च ।
कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥७२॥

अर्थ—सब प्रकारका तत्त्वार्थज्ञान, सब प्रयोगज सिद्धि और समस्त कविताओंमें सर्वत्र इसका विनियोग होता है ॥ ७२ ॥

'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' शिरो मे पातु सर्वतः ।
'श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा' भालं मे सर्वदाऽवतु॥७३॥

अर्थ-'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा ' सम्यक्प्रकार मेरे शिरकी रक्षा करो. 'श्रींवाग्देवतायै स्वाहा' मेरे कपालकी रक्षा करो ॥ ७३ ॥

'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति' श्रोत्रे पातु निरन्तरम् ।
'ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा'नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ॥ ७४ ॥

अर्थ—'ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' सर्वदा मेरे दोनों कर्णोंकी, 'ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा' सर्वदा मेरे दोनों नेत्रोंकी रक्षा करो ॥ ७४ ॥

'ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा' नासां मे सर्वदाऽवतु ।
'ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा' चोष्ठं सदाऽवतु॥७५॥

अर्थ–' ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा ' सर्वदा मेरी नासिकाकी, ' ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठात्र्यै देव्यै स्वाहा ' सदा मेरे ओष्ठोंकी रक्षा करो ॥ ७५ ॥

' ॐ श्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति ' दन्तपंक्तिं सदाऽवतु ।
ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु ॥ ७६ ॥

अर्थ–' ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा ' यह मंत्र सदा मेरी दन्तपंक्तिकी रक्षा करो. 'ऐं' यह एकाक्षर मंत्र सदा मेरे कंठकी रक्षा करो ॥ ७६ ॥

'ॐ श्रीं ह्रीं' पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे 'श्रीं' सदाऽवतु ।
'ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा'वक्षःसदाऽवतु॥७७॥

अर्थ–'ॐ श्रीं ह्रीं ' यह मंत्र मेरी ग्रीवाकी, 'श्रीं' मेरे दोनों कंधोंकी ' ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करो ॥ ७७ ॥

' ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा'मे पातु नाभिकाम् ।
'ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहे'-ति मम हस्तौ सदाऽवतु ।७८।

अर्थ–' ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा ' मेरी नाभिकी, ' ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा ' मेरे दोनों हाथोंकी सदा रक्षा करो ॥ ७८ ॥

'ॐ सर्ववर्णात्मिकायै' पादयुग्मं सदाऽवतु ।
'ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा' सर्वं सदाऽवतु ॥ ७९ ॥

अर्थ-' ॐ सर्ववर्णात्मिकायै स्वाहा ' मेरे चरणयुगलकी और ' ॐ वागधिष्ठात्र्यै स्वाहा ' मेरे सर्वांगकी सदा रक्षा करो ॥ ७९ ॥

'ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा' प्राच्यां सदाऽवतु ।
'ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा'ऽग्निदीशि रक्षतु ८०

अर्थ-' ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा ' मेरे पूर्वदिक्, ' ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा ' मेरे अग्निकोणमें सर्वदा रक्षा करो ॥ ८० ॥

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ' ।
सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ॥ ८१ ॥

अर्थ-' ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ' यह मंत्र-राज दक्षिणदिशामें मेरी सदा रक्षा करो ॥ ८१ ॥

' ऐं ह्रीं श्रीं' त्र्यक्षरो मंत्रो नैर्ऋत्यां सर्वदाऽवतु ।
'ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा' मां वारुणेऽवतु ।८२।

अर्थ-' ऐं ह्रीं श्रीं ' यह त्र्यक्षर मंत्र मेरे नैर्ऋत्यकोण,

'ॐ जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा' मेरे पश्चिमदिशामें सर्वदा रक्षा करो ॥ ८२ ॥

'ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा' वायव्ये मां सदाऽवतु ।
'ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा' मामुत्तरेऽवतु८३

अर्थ-'ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा' मेरे वायुकोण, 'ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा' मेरे उत्तरदिशामें सदा रक्षा करो ॥ ८३ ॥

'ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहै'-शान्यां सदाऽवतु ।
'ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा' चोर्ध्वं सदाऽवतु ॥८४॥

अर्थ-'ऐं सर्वशास्त्रवासिन्ये स्वाहा' मेरे ईशानकोण, 'ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा' मेरे ऊर्ध्वभागमें सदा रक्षा करो ॥८४॥

'ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा'ऽधो मां सदाऽवतु ।
'ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा' मां सर्वतोऽवतु॥८५॥

अर्थ-'ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा' मेरे अधोभाग और ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा' मेरे समस्त दिक्की रक्षा सर्वदा करो ॥ ८५ ॥

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ।
इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥ ८६ ॥

अर्थ–हे वत्स नारद ! यह मंत्रशरीर ब्रह्मस्वरूप विश्वजय नामक कवच तुमसे मैंने कहा ॥ ८६ ॥

पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने ।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥८७॥

अर्थ–पूर्वकालके समय मैंने यह कवच गंधमादनपर्वतमें धर्मदेवके मुखसे सुना था. अब अतिशय स्नेह होनेके कारण तुमसे कहा. किन्तु यह कवच कभी किसीके निकट न कहना चाहिये ॥ ८७ ॥

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः ॥ ८८ ॥

अर्थ–वस्त्र, अलंकार और चन्दनद्वारा यथाविधि गुरुदेवकी अर्चना करके गुरुदेवके चरणमें दण्डवत् प्रणामपूर्वक यह कवच धारण करै ॥ ८८ ॥

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत् ।
यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत् ॥८९॥

अर्थ-पांच लक्षवार जप करनेसे कवच सिद्ध होता है. कवचधारी पुरुष कवचके सिद्ध होनेसेही बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् होता है ॥ ८९ ॥

महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः ॥ ९० ॥

अर्थ-और वाग्मी, कवीन्द्र और त्रैलोक्यविजयी होता है. अधिक क्या ? इस कवचके प्रसादसे सबको जीत लेनेमें समर्थ होता है ॥ ९० ॥

इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने ।
स्तोत्रपूजाविधानं च ध्यानं च वन्दनं शृणु ॥९१॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे देवीकवचवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्थ-हे मुने ! मैंने तुमसे यह कण्वशाखोक्त कवचका विषय कहा. पूजाविधि, ध्यान और वन्दनादिका विषय वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ९१ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरघुवंशशर्मशास्त्रिकृत-भाषानुवादे देवीकवचवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच ।

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम् ।
महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा ॥ १ ॥

अर्थ–नारायणने कहा–हे वत्स नारद ! पूर्वकालके समय ऋषिवर याज्ञवल्क्यने जिस स्तोत्रसे वाग्देवी सरस्वतीका स्तवन किया था, इस समय सर्वकामप्रद उसी सरस्वतीस्तवका कीर्तन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥

गुरुशापाच्च स मुनिर्हृतविद्यो बभूव ह ।
तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम् ॥ २ ॥

अर्थ–मुनिवर याज्ञवल्क्य गुरुशापके कारण, समस्त वेदादि भूलकर अत्यन्त दुःखित चित्तसे पुण्यप्रद रविस्थानमें गये ॥ २ ॥

संप्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे ।
तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ ३ ॥

अर्थ–वहीं कुछ काल तपस्याके पीछे सूर्यदेवके नयन-

गोचर होनेपर अति शोकमें पीडित हो वारंवार रोदन करते २ उनकी स्तुतिमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥

सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदाङ्गमीश्वरः ।
उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे ॥४॥

अर्थ–तब भगवान् सूर्यने उनको संपूर्ण वेद और वेदाङ्ग-शिक्षाप्रदानपूर्वक कहा, हे वत्स ! अब तुम स्मरणशक्तिप्राप्तिके लिये भक्तिसहित वाग्देवीकी स्तुति करो ॥ ४ ॥

तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यन्तर्धानं चकार सः ।
मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकंधरः ॥ ५ ॥

अर्थ–उन याज्ञवल्क्यसे यह कहके सूर्यनारायण वहांसे अन्त-र्धान होगये. इधर मुनिवर याज्ञवल्क्य स्नान करके भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाय, वाग्देवीके स्तवपाठमें प्रवृत्त हुए ॥ ५ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच ।

कृपां कुरु जगन्मातर्ममैवं हततेजसम् ।
गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम् ॥ ६ ॥

अर्थ–याज्ञवल्क्यने कहा–हे मातः ! गुरुके शापसे मेरी मति भ्रंश हुई है, मैं विद्याहीन और तेजोहीन होगया हूं,

मेरे दुःखकी अवधि नहीं है. हे जगज्जननि ! मुझपर कृपा करो ॥ ६ ॥

ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम् ।
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥

अर्थ-मुझको ज्ञान, विद्या, स्मृति, शिष्यबोधिनी शक्ति, ग्रन्थकर्तृत्व और प्रतिभासम्पन्न सुशिष्य प्रदान करो ॥ ७ ॥

प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम् ।
लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु ॥ ८ ॥
यथांकुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः ।
ब्रह्मरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी ॥ ९ ॥

अर्थ-जिससे सज्जनोंके समाजमें मेरी भी भलीभांति प्रतिभा (नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धि) और विचारशक्ति प्रसारित हो. दैवके दुर्विपाकसे मेरा जो कुछ नष्ट हुवा है वह भस्मगत बीजांकुरकी समान संपूर्ण मेरे उत्पादिका शक्तिशून्य चित्तक्षेत्रमें होकर पुनर्वार नवीनभाव धारण करे. हे मातः ! तुमही ब्रह्मस्वरूपिणी, तुमही सर्वश्रेष्ठ, तुमही ज्योतिःस्वरूपा, तुमही सनातनी हो ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमोनमः ।
विसर्गबिन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च ॥ १० ॥

अर्थ-और तुमही समस्त विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हो. इस कारण तुमको वारंवार नमस्कार करता हूं. हे मातः ! अनुस्वार, विसर्ग और चन्द्रबिन्दु जिन वर्णोंका आश्रय करके रहते हैं ॥ १० ॥

तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नीत्यै नमोनमः ।
व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी॥११॥

अर्थ-तुम वही वर्णस्वरूपिणी हो, अतएव तुमको नमस्कार है. हे मातः ! तुमही शास्त्रकी व्याख्यास्वरूप और तुमही समस्त व्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हो ॥ ११ ॥

यया विना प्रसंख्यावान्संख्यां कर्तुं न शक्यते ।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः॥ १२॥

अर्थ-तुम्हारे विना गणितविद्याके पारदर्शी भी किसी विषयकी गणना करनेमें समर्थ नहीं हैं. अतएव कालगणनाकी संख्यास्वरूप तुमको वारंवार नमस्कार है ॥ १२ ॥

भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमोनमः ।
स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३ ॥

अर्थ–तुमही मनुष्योंका भ्रमभंजन करनेवाली सिद्धांतशक्तिरूप हो, अतएव तुमको वारंवार नमस्कार है. हे मातः ! तुमही स्मृतिशक्ति, तुमही ज्ञानशक्ति, तुमही बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी हो ॥ १३ ॥

प्रतिभा कल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमोनमः ।
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥ १४ ॥

अर्थ–तुमही प्रतिभाशक्ति और तुमही कल्पनाशक्ति हो, अतएव वारंवार तुमको प्रणाम करते हैं. स्वयं सनत्कुमारने भी जब भ्रमयुक्त होकर ब्रह्माजीसे प्रश्न किया ॥ १४ ॥

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ।
तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥ १५ ॥

अर्थ–तब वे उसका सिद्धान्त करनेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे, और परमात्मरूपी परमेश्वर श्रीकृष्णने वहाँ उपस्थित होकर ॥ १५ ॥

उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजाप्रते ।
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः ॥ १६ ॥

अर्थ-कहा, हे प्रजापते ! तुम अभीष्टदात्री वागीश्वरीका स्तव करो, तो तुम्हारा सिद्धान्त स्थिर होगा. तब चतुराननने परमेश्वरकी आज्ञानुसार देवी सरस्वतीका स्तवन किया ॥ १६ ॥

चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ।
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा ॥ १७ ॥

अर्थ-तब उन (सरस्वतीजी) के प्रसादबलसे अति उत्तम सिद्धान्त स्थिर किया. एकदिन वसुन्धराने संदिग्धचित्तसे अनन्तदेवके निकट एक ज्ञानविषयक प्रश्न किया ॥ १७ ॥

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः ।
तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया ॥१८॥

अर्थ-तब वे भी सिद्धांत स्थिर करनेमें असमर्थ होकर मूककी समान निरुत्तर रहे; अन्तमें महाभीत हो कश्यपकी आज्ञानुसार तुम्हारा स्तव करनेसे ॥ १८ ॥

ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम् ।

व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा ॥१४॥

अर्थ—उनका भ्रम दूर होकर सिद्धान्त स्थिर हुआ. जब श्रीवेदव्यासजीने वाल्मीकिके निकट जाकर पुराणसूत्रका विषय पूँछा ॥ १९ ॥

मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम् ।
तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः ॥ २० ॥
संप्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्धत्वंसदीपकम् ।
पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः ॥ २१ ॥

अर्थ—तब मुनिवर वाल्मीकिजीने हतबुद्धि होकर जगत्की मातास्वरूप तुमको स्मरण किया. तुम्हारे प्रसादसे ज्ञान-ज्योतिके प्रकाशित होनेपर ऋषिवरका भ्रमान्धकार दूर हुआ तब वह श्रीवेदव्यासके किये प्रश्नके विषयका सिद्धान्त स्थिर करनेमें समर्थ हुए. तब कृष्णांशोत्पन्न श्रीव्यासदेवजीनें महर्षि वाल्मीकिजीके मुखसे पुराणसूत्रका विषय सुनकर तुम्हारी महिमा जानी ॥ २० ॥ २१ ॥

तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे ।

तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह ॥ २२ ॥

अर्थ-और फिर पुष्करतीर्थमें जाय शतवर्षपर्यंत शान्तिदात्री स्वरूप तुम्हारी आराधनामें प्रवृत्त हुए. इसके पीछे तुम्हारे प्रसन्न होकर उनको वर देनेसे वे (वेदव्यास) कवीन्द्रपदवीमें आरूढ हुए ॥ २२ ॥

तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः ।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम् ॥ २३ ॥

अर्थ-फिर उन्होंने वेदविभाग और अठराह पुराणोंकी रचना करी. जब महेन्द्रने सदाशिवसे तत्त्वज्ञानकी कथा पूंछी ॥ २३ ॥

क्षणं तामेव संचिंत्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ।
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम् ॥ २४ ॥

अर्थ-तब सदाशिवने क्षणकाल तुम्हारी चिन्ता करके इन्द्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश प्रदान किया. फिर एक समय देवराजने सुरगुरु बृहस्पतिजीके निकट शब्दशास्त्रविषयक प्रश्न पूंछा ॥ २४ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम् ।
उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम् ॥ २५ ॥

अर्थ-तब उन्होंने उसके उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पुष्करतीर्थमें जाय देवपरिमाणसे हजारवर्षपर्यन्त तुम्हारी आराधना करके तुमसे वर पाया. फिर दिव्य सहस्र वर्षपर्यन्त महेन्द्रको शब्दशास्त्र और शब्दशास्त्रार्थ विषयक उपदेश प्रदान करनेमें समर्थ हुए ॥ २५ ॥

अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः ।
ते च तां परिसंचिंत्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम् ॥ २६ ॥

अर्थ-हे सुरेश्वरि ! जो मुनिगण शिष्यको शिक्षा प्रदान करते हैं, जो स्वयं अध्ययनमें प्रवृत्त होते हैं वे सभी प्रथम तुम्हारा स्मरण करके अपने कार्यमें प्रवृत्त होते हैं ॥ २६ ॥

त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः ।
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चाऽपि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ २७ ॥

अर्थ-कितनेही मुनीन्द्र, कितनेही मनु, कितनेही दानव, कितनेही दैत्येन्द्र, कितनेही अमर, यही क्या ब्रह्मा, विष्णु और महादेवपर्यन्त तुम्हारी पूजा और तुम्हाराही स्तव करते हैं ॥ २७ ॥

जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः ।
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः ॥२८॥

अर्थ-किन्तु विष्णु जब सहस्रमुखोंसे, महादेव पांच मुखोंसे और ब्रह्मा चार मुखोंसे तुम्हारा स्तव करनेमें जड़ीभूत होते हैं तो फिर मैं सामान्य मनुष्य एकमुखसे क्या स्तव करूं ? ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकंधरः ।
प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥

अर्थ-कृतोपवास महर्षि याज्ञवल्क्यने इसप्रकार कह-कर भक्तिभावसे मस्तक झुकाय देवीको प्रणाम किया और क्षणक्षणमें रुदन करने लगे ॥ २९ ॥

ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाऽभ्युवाच तम् ।

सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह ॥ ३० ॥

अर्थ-इस समय फिर उन ज्योतीरूपा महामाया सरस्वतीसे नहीं रहागया सो उन्होंने उनके समीप आकर कहा-"हे वत्स ! तुम सुकवीन्द्र होओ." इसप्रकार वर दे, वैकुण्ठधामको चली गई ॥ ३० ॥

याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत् ।
स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ-जो याज्ञवल्क्यकृत इस सरस्वतीस्तवका पाठ करत है, वह सुकवि वाग्मी और बृहस्पतिके समान बुद्धिशक्तिसंपन्न हो सकता है ॥ ३१ ॥

महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत् ।
स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सरस्वतीस्तोत्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्थ-यदि महामूर्ख मनुष्य भी एक वर्षतक इस वाणी-

स्तवका पाठ करता है तो वह अवश्यही सुपण्डित, मेधावी (स्मरणशक्तिसंपन्न) और सुकवि होता है ॥ ३२ ॥

तर्कतर्कनिधीन्द्वब्दे रघुवंशेन धीमता ।
कृतो भाषानुवादोऽयं सरस्वत्याः प्रसादतः ॥ १ ॥

इति श्रीदेवीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरघुवंशशर्म-शास्त्रिकृत--भाषानुवादे सरस्वतीस्तोत्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इति सरस्वतीकवच—स्तोत्र—भाषानुवादः समाप्तः ।

सब प्रकारकी पुस्तकें मिलनेका ठिकाना—
हरिप्रसाद भगीरथजीका,
' प्राचीन पुस्तकालय '
कालकादेवीरोड, रामवाडी—मुंबई.